ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 294-298
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

वल्लभ मत और अष्ठछाप के कवि

आयुष बघेल

शोध अध्येता– यू0जी0सी0 नेट, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ0प्र0), भारत

Received- 04.03.2022, Revised- 07.03.2022, Accepted - 11.03.2022 E-mail: aaryvart2013@gmail.com

सारांशः – *वल्लभाचार्य ने जिस विधि से अपने मत की स्थापना की थी और जिस प्रकार धर्म साधना में ऊँच–नीच, राजा–रंक तथा जातीय भेद–भाव को महत्वपूर्ण कहते हुए प्रत्येक के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया था, वह पूर्णतया युगानुसार सिद्ध हुआ क्योंकि पूर्व मध्यकाल से लेकर पूरे मध्ययुग तक के हिन्दू समाज में सामाजिक भेदभाव घर कर गया था। धर्म तो जैसे लौकिक दृष्टि से ठीक दो स्तरों में विभक्त होता जा रहा था–एक उच्च वर्गीय और दूसरा निम्न वर्गीय। यद्यपि पुराणकारों ने अपने एश्वर्यशाला भगवान को 'पत्रं–पुष्पं–फलं–तोयं' से सन्तुष्ट करने का विधान कर दिया था तथापि सुगुणोपासना प्रमुखतः समाज के उपारले स्तर को ही प्रभावित कर सकी थी और समाज का एक बहुत बड़ा भाग घुमक्कड़ साधुओं–योगियों तथा फकीरों की गुदड़ी से मोहित होता जा रहा था और संतों की वाणी से मुग्ध होने वाला साधारण जन समुदाय भी आगे चलकर साम्प्रदायिक संतो के 'घट' के घटाटोप में उलझ गया था। ठीक ऐसे ही वातावरण में वल्लभाचार्य ने जाति एवं वर्ग निर्पेक्ष मत की स्थापना की। अतः उनके मत को मध्यकाल में प्रचार मिल सका। सौभाग्यवश इस मत में कुछ प्रतिभाशाली संगठनकर्ता भी उदित हुए जिन्होने कवियों को इस ओर आकृष्ट किया और जब युग नायक कवियों का आश्रय प्राप्त हो गया तो यह मत देश के एक बहुत बड़े भाग में प्रचारित हो गया।*

कुंजीभूत शब्द– धर्म साधना, ऊँच–नीच, राजा–रंक, जातीय भेद–भाव, मध्यकाल, हिन्दू समाज, साम्प्रदायिक।

गोपीनाथ– ये वल्लभ के ज्येष्ठ पुत्र थे और गद्दी पर 1530 से 1535 तक आरूढ़ रहे।

विट्ठलनाथ– गोपीनाथ के पश्चात् छोटे पुत्र विट्ठलनाथ जी (1515–1587 ई0) गद्दी के अधिकारी हुए। वल्लभ सम्प्रदाय के प्रचार का पूरा–पूरा श्रेय इन्हीं को दिया जा सकता है। कहा जाता है कि इनसे धर्मसहिश्णु भी प्रभावित हुआ था। इन्होंनें 'विद्वन्मण्डल', 'भक्ति हंस', 'भक्ति निर्णय', 'निबन्ध प्रकाश टीका', 'सुबोधिनी–टिप्पणी', 'श्रृंगार–रस–मण्डल' नामक ग्रन्थों की रचना की थी और 'अणु भाश्य को पूर्ण किया था। आचार्य पद पर आरूढ़ होने के समय (1563 ई0) से लेकर जीवन पर्यन्त ये प्रमुख स्थानों का भ्रमण करते रहे। गुजरात में तो वल्लभ सम्प्रदाय का प्रचार इन्होंने ही किया था।

इनके सातपुत्रों–गिरवर, गोविन्द राय, बालकृष्ण, गोकुल नाथ, रघुनाथ, यदुनाथ तथा घनश्यामजी ने भी आचार्य के मत का विभिन्न गदि्दयों पर आसीन होकर प्रचार किया था। पर इन सारे प्रयासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास है 'अष्टछाप' की स्थापना। अब तक वल्लभाचार्य के मत से प्रभावित अनेक ब्रजभाषा कवि छिटपुट रचनाएँ करते रहे। स्वामी विट्ठलनाथ ने इन अनेक कवियों में से आठ सर्वोत्तम कवियों को चुन कर 'अष्टछाप' की स्थापना की। ये आठ कवि थे––महात्मा सूरदास, परमानन्द दास, कुम्भन–दास, कृष्णदास, नंददास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी तथा गोविन्द स्वामी। इनमें से प्रथम चार वल्लभाचार्य के शिष्य बताये जाते हैं और शेष विट्ठलनाथ के।

अब तक गोबर्द्धन पर निर्मित श्रीनाथ जी का मन्दिर, जिसके निर्माण का श्रेय पूरनमल खत्री को दिया जाता है, पुष्टि मार्गियों का प्रधान केन्द्र बन चुका था। महात्मा सूरदास जी ने वल्लभाचार्य के आदेश से इसी मन्दिर में 'भागवत' की कथाओं को अपने सरस पदों में बाँधा था। पुष्टिमार्ग में सूरदास जैसे कवि के सम्मिलित हो जाने पर तो इस सम्प्रदाय का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया। वास्तविकता तो यह है कि कृष्णोपासकों में साहित्यिक दृष्टि से, पुष्टिमार्गी कवियों का ही ऊँचा स्थान है। 'भागवत' पुराण को आधार मानकर चलने वाले साहित्य को महत्व मिलना स्वाभाविक ही था, क्योंकि जैसा कि हमें ज्ञात है, साहित्य तथा भक्ति जिस किसी दृष्टि से भी देखा जाय 'भागवत' भक्ति साहित्य का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। किन्तु इस सम्प्रदाय के कवियों के साहित्य पर जैसे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में मुगल भारत की शान–शौकत–सजधज की एक आभा तिरती सी दिखाई पड़ती है। आचार्य ने शुक्ल से इस सम्प्रदाय की विशेषता एवं इसके महत्व के सम्बन्ध में जो उदगार व्यक्त किये हैं वे अक्षरशः सत्य हैं–

''वल्लभ सम्प्रदाय में जो उपासना–पद्धति या सेवा–पद्धति ग्रहण की गई उसमें भोग–राग तथा विलास की प्रभूत सामग्री के प्रदर्शन की प्रधानता रही। मन्दिरों की प्रशंसा 'केसर की चक्कियाँ चलैं हैं' कह कर होने लगी। भोग–विलास के इस आकर्षण का प्रभाव सेवक–सेविकाओं पर कहाँ तक अच्छा पड़ सकता था। जनता पर चाहे जो प्रभाव पड़ा हो पर उक्त गद्दी के भक्त शिष्यों ने सुन्दर–सुन्दर पदों द्वारा जो मनोहर प्रेम–संगीत–धारा बहाई उसने मुरझाते हुए हिन्दू–जीवन को सरस और प्रफुल्ल किया।''

इन कवियों को आचार्यो ने सेवा, श्रृंगार तथा कीर्तन की जो योजना बताई थी उसी पर चल कर इन्होंने कृष्ण के श्रृंगारिक

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

रूप का खुलकर चित्रण किया है। वल्लभाचार्य के शिश्यों ने बहुत शीघ्र पुष्टिमार्ग में वैभव एवं राजसी ठाट–बाट का समावेश कर दिया था और उनके समर्थक मणि–मुक्ताओं से हदे हुए कृष्ण की आराधना बड़े–बड़े उत्सवों द्वारा करने लगे। सगुणोपासकों में जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया था बहुधा उपरले स्तर के धनाढ्य व्यक्ति थे। अतः स्वभावतः वल्लभ मत को, समाज के इस वर्ग ने अपना लिया पर कवियों की वाणी से जनसाधारण भी लाभान्वित होता रहा और इन कवियों को ही इस मत के परवर्ती प्रचार का श्रेय दिया जा सकता है जिस पर हम आगे विचार करेंगे। जहाँ तक रसिकता का सम्बन्ध है, अष्टछाप के कवियों ने इसे पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

'अष्टछाप' की स्थापना ने कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों का विषय सीमित कर दिया और सूरदास जी जिनका इन आठों कवियों में बहुत ऊँचा स्थान है, एकनिष्ठ होकर कृष्ण के मधु रूप को, उस रूप को जो पुष्टिमार्गीय मतानुकूल था, चित्रित करने लगे। ये तथा इस शाखा के अन्य कवि भी इसी लिए केवल फुटकल पदों तक ही रह गये। किसी को कृष्ण का वह विस्तृत पूर्ण एवं व्यापक रूप नहीं भा सका जो किसी प्रबन्ध काव्य का विषय बनता पर साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से, इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं है, क्योंकि साहित्य काव्य के रूपों की कसौटी पर नहीं, आत्मा की कसौटी पर कसा जाता है और वहाँ इस सम्प्रदाय के अनेक कवि बहुत खरे उतरते हैं। हाँ, सामाजिक दृष्टि से इसे हम एक कमी स्वीकार कर सकते हैं। अस्तु, बाल एवं यौवन–लीलाओं तक ही ये सभी कवि रह जाते हैं। यदि इस अगुआ कवि ने कृष्णावतार को तत्वतः धर्म की रक्षा के हेतु के रूप में देखा होता तो वहाँ भी मानवजीवन की वे समस्त अनेकरूपताएँ विद्यमान थीं जो तुलसी के राम में थी। पर यहाँ तो जयदेव और विद्यापति का आदर्श था, पुष्टिमार्ग का आग्रह था और 'अश्टछाप' की छाप थी। फलतः साहित्यिक मूल्यों के तराजू पर काव्य–सौश्ठव एवं रसिकता से भींजा हुआ यह प्रेम संगीत चाहे जितना भी भारी हो, पुष्टिमार्ग के प्रचार में चाहे जितना भी गौरवपूर्ण हो पर कोई ठोस जीवन–दर्शन देन में सूरदास और उनके समान सभी कृष्णभक्त कवि असफल रहे। आने वाली पीढ़ी को इन्होंने 'राधा' 'कृष्ण' नामक नायिका–नायक अवश्य दे दिया।

सूरदास– यही महानुभाव इस शाखा के अगुआ माने जाते हैं सम्प्रदाय में इन्हें उद्धव का अवतार कहा जाता है। इनका समय सन् 1483 से 1563 ई0 बताया गया है। चालीस वर्ष की अवस्था में ये वल्लभाचार्य के शिष्य हुए थे और उनकी प्रेरणा से 'भागवत्' के पदों को ब्रजभाषा में गेय बनाकर कहने लगे जिसमें दशम स्कन्ध की कथा ने ही अधिक आकृष्ट किया। शेष स्कन्धों की कथा संक्षेप में फर्जअदायगी के लिए कह दी गई और इस प्रकार 'सूरसागर' का निर्माण हुआ। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया है, जयदेव तथा विद्यपति ही 'भागवत' के बाद कृष्ण भक्त कवियों के उत्प्रेक थे। विद्यापति की 'पदावली' ने तो इन्हें बहुत अधिक प्रभावित किया था। लोकगीतों से भी सूर तथा अन्य कवि प्रभावित हुए बिना नहीं रहे होंगे। रासलीला की प्राचीन परम्परा का बोध हम प्राप्त कर चुके हैं और यह भी ज्ञात कर चुके हैं कि 'भागवत' के इतर भी कोई लोक प्रचलित रास परम्परा चली आ रही थी। ऐसी अवस्था में कृष्ण सम्बन्धी मधुर लोकगीतों की परम्मपरा भी अवश्य रही होगी। विशेषतया ब्रजमण्डल में तो आज के अनेक प्रचलित लोकगीतों का मूल बल्लभाचार्य के उदय के भी तीन–चार सौ वर्ष पूर्व खोजा जा सकता है जिसमें ग्वालबाल की लीलाओं का संकेत मिलता है। स्वयं कबीर ने भी पदो के लिए ब्रजभाषा ही चुना था। आशय यह कि सूर से पूर्व भी ब्रज भाशा में गीत रचे गये थे और लोक गीतों में कृष्ण को स्थान दिया गया था। पर कृष्ण काव्य की महत्ता सूरदास जी से ही है। रामभक्ति के प्रसार में महात्मा तुलसीदास का जी का स्थान है, वही स्थान कृष्ण भक्ति में सूरदास जी को दिया जाता है।

सूरदास जी ने भगवान कृष्ण के दो रूपों का चित्रण किया–पहला शिशु रूप तथा दूसरा श्रृंगारिक रूप। अतः उनके साहित्य में वात्सल्य तथा श्रृंगार की ही प्रधानता है यह भी कहना अनुचित न होगा कि इन दोनों क्षेत्रों में ये अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रखते। इनके वात्सल्य–चित्रण से प्रभावित होकर तुलसीदास ने भी 'गीतावली' में इसकी योजना की थी पर उन्हें वैसी सफलता न मिल सकी और जैसा कि आचार्य शुक्ल ने लिखा है "उसमें बाल सुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूप–वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल–चेष्टाओं के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भण्डार और कहीं नहीं।" यह सूरदास के बाल–चित्रण का ही प्रभाव है कि बाल–गोपाल के पूर्वजों की संख्या आज भी बहुत अधिक है। सूरदास के श्रृंगारिक पदों से किसी प्रकार कम प्रचार इन वात्सल्य भाव वाले पदों का नहीं है, यह चित्रण इतना मनोवैज्ञानिक और यथार्थ है कि स्वभावतः हर व्यक्ति की प्रवृत्ति को तुष्ट करता है और उधर कृष्ण की रसिक लीलाओं के चित्रण में भी सूरदास जी को समान सफलता मिली है। यहाँ श्रृंगार के दोनों पक्षों–संयोग एवं वियोग का उसी तन्मयता के साथ वर्णन किया गया है। ग्वाल बालों एवं गोपियों के साथ विभिन्न लीलाओं के चित्रण से 'सूरसागर' का अधिकांश भाग पूरित है। दान लीला, माखन लीलाओं, चीर हरण लीला, रासलीला आदि में सूरदास ने 'भागवत' की सी ही निष्ठा दिखाई है, हाँ जब ये विलोग पक्ष की ओर आते हैं तो इनका कवि बहुत आगे बढ़ जाता है और वियोग की समस्त दशाओं का चित्रण सफलतापूर्वक करने लगता है। सूर की विरहिणी राधा ने भी रसिक भक्तों को कम प्रभावित नहीं किया है। पर इन सभी चित्रणों से अधिक मर्मस्पर्शी और सैद्धान्तिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण 'सूरसागर' का ही 'भ्रमरगीत' है

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

जिसमें निर्गुण के ऊपर सगुण ब्रह्म की स्थापना की गई है। सूरदास का यह कार्य सगुण भक्ति के प्रचार में प्रशंसनीय है। वैसे 'भ्रमरगीत' की परम्परा बहुत प्राचीन है और सूरदास के बाद भी चलती रही पर इन सब में 'सूरसागर' का 'भ्रमर गीत' अपने ढंग का अकेला है। अधिकांश कवियों ने बुद्धि द्वारा ही सगुण ब्रह्म की स्थापना कराने की ऐसी चेश्टा की है जहाँ उनकी गोपियाँ एक कुशल तार्किक बन जाती हैं जब कि सूरदास की गोपियाँ अपना हृदय खोलकर ही रख देती हैं जो कृश्णमय है और जिसमें सगुण ब्रह्म की लीलाएँ साँस की हर धड़कन में छिपी है। यद्यपि 'भागवत' में इस प्रकार की कोई योजना नहीं की गई थी। जहाँ सगुण–निर्गुण का तर्क–वितर्क होता यथापि सूरदास जी को इसकी उतनी ही आवाश्यकता थी जितनी तुलसीदास को। यह पूर्णतया परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए किया गया है। तर्क यहाँ भी कम नहीं है। क्योंकि सूरदास को भी निर्गुणवादियों को करारा उत्तर देना था पर इसमें भी सहृदयता है, केवल मानसिक खिलवाड़ नहीं और गोपियों के उपालंभ ने तो जो कहीं–कहीं हृदय पर सीधे चोट करता है, सगुण की मान्यता स्वतः स्थापित कर दी है महानता यह है कि सगुणोपासना की साकार मूर्ति राधा ने इस तर्क–वितर्क से बिल्कुल पृथक है। वे उद्धव के पास जाती तक नहीं है। तब लौटते समय निर्गुण ब्रह्म के समर्थक उद्धव स्वयं राधा के घर जाते हैं और कुछ संदेश माँगते हैं पर "हाय, राधिका कौन–सा संदेश दे। जिस गोपाल के साथ गुड़ियों के खेल खेले हैं, ठठोली से पनघट मुखरित हुए हैं, वे ही आज मथुरा के सम्राट हैं। वे संदेश चाहते हैं, उन्होंने इन्हें भेजा है जो इतने समीप थे वे आज इतने दूर हो गये हैं। राधिका ने उद्धव को देखा और उनके दोनों विशाल नयन उमग चले"। उद्धव पर राधा की इस अवस्था का कितना गहरा प्रभाव पड़ा था यह भी सूरदास ने स्वयं उद्धव से ही उस समय कहलाया है जब वे लौट कर कृष्ण से मिलते हैं और राधा की करुण अवस्था का चित्रण करते हैं। सूरदास की राधा का मूल्यांकन करते हुये आचार्य हजारी प्रसाद जी ने जो हृदय–स्पर्शी भाव व्यक्त किये हैं वे उल्लेखनीय हैं––

"..... । सूरसागर की यही विरहविधुरा राधिका है। इस राधिका के आत्मसमर्पण में एक ऐसा गाम्भीर्य है जो अन्यत्र दुर्लभ है। वे भगवान को अपना सर्वस्व दे देंगी बशर्ते कि भगवान चाहे। श्री कृश्ण को पाना उनका लक्ष्य नहीं है, श्री कृष्ण का तृप्त होना ही लक्ष्य है। ..... राधिका का शरीर मन प्राण केवल एक ही उपादान से गठित है–उनकी तृप्ति।"

सूरदास ने जिस राधा को कृष्ण से मिलते समय ठग जाने की आशंका दिलाई थी वह अन्त तक–कृष्ण से मथुरा में पुनर्मिलन के बाद भी ठगी–सी ही रह जाती है। प्रथम मिलन तथा अन्तिम मिलन के ठीक बाद के दो चित्र देखते ही बनते हैं––

बूझत स्याम कौन तू गोरी
कहाँ रहत काकी है बेटी देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।।
काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलत रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति श्रवनन नंद ढोटाकरत रहत माखन दधि चोरी।।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहें खेलन संग चलौ मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि बातनि भुलाई राधिका गोरी।।

और अन्त!

करत कछु नाहीं आज बनी।
हरि आये हौं रही ठगी सी जैसे चित्तघनी।।
आसन हरशि हृदय नहिं दीनों कम कुटी अपनी।
न्यवछावर उन अरघन अंचल जलधाराजु बनी।।
कंचुकि तें कुच–कलश प्रगत है टूटिन तरकतनी।
अब उपजी अतिलाज मनहिंमन समुझत निज–करनी।।

नन्ददास– अष्टछाप के अन्य कवियों में सूरदास के बाद नन्ददास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्हीं नन्ददास के सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है–"और कवि गढ़िया–नन्ददास जड़िया"। ये सूरदास के ही समकालीन थे। इनके रचे लगभग 15 ग्रन्थ बताये जाते हैं पर प्रकाशित केवल चार ही हैं औरस उनमें भी 'रासपंचाध्यायी' तथा 'भ्रमरगलत' का ही महत्व है। सैकड़ों फुटकल पदों की भी रचना इन्होंने की थी। कृश्ण रास–लीला का बहुत ही सुन्दर वर्णन साहित्यिक भाषा में किया गया है। 'भ्रमर गीत' में सूरदास वाली सहृदयता का अभाव होते हुए भी काफी प्रांजलता एवं सवलता है। तार्किकता तो मार्के की है–

जौ उनके गुन नाहिं और गुन भए कहाँ ते?
बीज बिना तरु जमै मोहि तुम कहीं कहाँ ते?
वा गुन की परछाँह री माया दरपन बीच।
गुन ते गुन न्यारे भए, अमल बारि जल कीच।।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

परमानन्ददास– बल्लभाचार्य के कविशिष्यों में परमानन्ददास का नाम आदर से लिया जाता है। ये भी अष्टछाप में सम्मिलित थे। इनकी कविता इतनी भावपूर्ण होती रही कि इनके किसी पद को सुनकर स्वयं बल्लभाचार्य भी कई दिनों तक सुध –बुध भूल गये थे। इनके फुटकर पद ही प्राप्य हैं। जिन्हें साहित्यिक और साम्प्रदायिक दोनों महत्व दिया जा सकता है। ये लालित्य में कहीं–कहीं सूरदास की स्मृति दिला जाते हैं। इनकी भक्ति मुक्ति से भी श्रेष्ठ है और ये ब्रजराज को छोड़कर वैकुण्ठ की भी कामना नहीं करते––

कहा रौं बैकुंठहि जाय ?
जहँ नहिंनंद, जहाँ न जसोदा, नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल और नहीं कदम की छाँय।
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।।

'परमानन्दसागर' में इसी प्रकार के भक्ति–प्रचराक 835 पद संग्रहीत हैं। रसिकता में भी ये बहुत आगे बढ़े हुए थे और हाव–भाव के श्रृंगारिक चित्रण में इन्होंने खूब तन्मयता दिखाई है।

कृश्णदास– वल्लभाचार्य के शिश्यों तथा अश्टछाप के कवियों में कृष्णदास कवि रूप में तो अधिक प्रसिद्धि न पा सके पर सम्प्रदाय इन्हें आचार्य के कृपापात्र के रूप में बहुत अधिक आदर देता है। ये ही मंदिर के प्रधान थे। राधा–कृष्ण–सम्बन्धी प्रेम–लीलाओं के परम्परित चित्रण ने इन्हें भी आकृश्ट किया था। इनके फुटकर पद ही विशेष प्रसिद्ध हो सके थे।

कुंभनदास– "संतनल को कहा सीकरी सों काम" वाले कुंभनदास अष्टछाप के उच्चकोटि के भक्त माने जाते हैं जिनकी विरक्ति और अलोभ की कथाएँ सम्प्रदाय में बहुत अधिक प्रचार पा चुकी हैं। सूरदास की भाँति इन्होंने भी कृष्ण की बाल–लीलाओं तथा प्रेम–लीलाओं का चित्रण फुटकर पदों में किया है पर यहाँ वह सौन्दर्य नहीं है।

चतुर्भुजदास– अपने पिता कुंभनदास से तो इन्हें कृश्ण भक्ति की प्रेरणा प्राप्त हुई ही थी, बिट्ठलदास जी के शिष्य हो जाने और अष्टछाप में सम्मिलित होने के बाद तो यह पूरी लगन से कृष्ण–चरित्र के गान में लीन हो गये। इनके रचे तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं–– 'द्वादसश यश', 'भक्ति–प्रताप' तथा 'हितजू को मंगल'।

छीतस्वामी– ये अष्टछाप के एक अन्य कवि हैं जिनके फुटकर पद आज भी मथुरा–बृन्दावन में लोगों द्वारा दुहराये जाते हैं। इनमें भी रसिकता कूट–कूट कर भरी हुई है। बिट्ठलनवाथ की शिश्यता में आने के पूर्व ये मथुरा में पंडागिरी करते थे और बीरबल जैसे सम्पन्न लोग इनके जजमान थे।

गोविंद स्वामी– ये भी अष्टछाप के कवि हैं। बिट्ठलनाथ ने इनके पदों से प्रसन्न होकर ही इन्हें अपना शिष्य बनाया था। संगीतज्ञ के रूप में भी इनकी अच्छी ख्याति थी और तानसेन भी इनका गाना सुनने आया करते थे। इनके फुटकर पद ही प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त आठ कवियों के अतिरिक्त, जिन्हें बिट्ठलनाथ जी ने चुनकर अश्टछाप की स्थापना की थी, कुछ अन्य कवि भी इस सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये थे। बात यह है कि बिट्ठलनाथ जी के आचार्यत्व एवं सूरदास के काव्य–कौशल ने बल्लभ सम्प्रदाय को बहुत अधिक प्रसिद्धि दे दी थी। दूसरे, इस सम्प्रदाय के कवयिों ने कृश्ण के ऐसे रूप को अपनाया था जो पूर्णतया सहृदयता के अनुकूल था। इस कृश्ण में माता–पिता अपनी वात्सल्य भावना की तृप्ति कर सकते थे तो रसिक अपनी रसिकता की प्यास बुझा सकते थे। फलतः सूरदास के कृष्ण का बहुत अधिक प्रचार हुआ और उससे प्रभावित होकर अनेक कवियों ने कृष्ण काव्य की रचना की। इनमें से कुछ ने बिट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी और कुछ स्वतंत्र रूप से बिना किसी साम्प्रदायिक प्लेटफार्म पर गये ही कृष्ण को अपने काव्य का विषय बनाकर कभी ब्रज पर कभी ब्रज की गोपियों पर तो कभी ब्रजवल्लभ पर ब्रजभाषाा में गये पदों की रचना करते रहे। जिन कवियों को बिट्ठलनाथ जी से दीक्षा मिली थी उनमें अष्टछाप के कवियों के बाद पठान रसखान का नाम विशेष उल्लेखनीय है। रसखान की रसिकता का इतना प्रचार रहा है कि लोगों ने श्रृंगार–सम्बन्धी कवित्त–सवैयों को ही 'रसखान' संज्ञा दे डाली थी। 'प्रेम वाटिका', 'सुजान रसखान', इनके दो प्रकाशित ग्रन्थ हैं जिनमें 'सुजान–रसखान' की ख्याति बहुत अधिक हुई और भक्तों के कण्ठों पर इसके सवैये गूँजते रहे। 'मानुष हों तो वही रसखान' या 'लकुटी अरु कामरिया पर' आज भी भक्त जन उतनी ही तन्मयता से रीझ कर 'आठहु सिद्धि नवों निधि का सुख' न्यौछावर करने को तत्पर हो उठते हैं। इनके कृष्ण का स्वरूप देखने योग्य ही है–

सेस महेस गनेश दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावै।
जादि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुबेद बतावै।।
नारद से सुकव्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

मीरा बाई–– साम्प्रदायिक दृष्टि से मीरा बाई को हम किसी एक विशेश मंच पर नहीं बिठा सकते हैं और यदि इनकी भक्ति का बीज खोजा जाय तो वह, सम्भवतः स्वयं मीरां से अपरिचित, प्राचीन आलवार परम्परा की भक्ति आण्डाल (अंदाल) की भक्ति में उपलब्ध होगा जिन्होंने कृष्ण के प्रेमोन्माद में कहा था––

"अब मैं पूर्ण यौवना हो गई हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को अपना पति नहीं बना सकती हूँ।"

देश के पश्चिमोत्तर भारत में सातवीं शताब्दी से ही सूफियों के बढ़ते हुए प्रभाव ने सम्भवतः मीरा को प्रभावित किया होगा। पर इन समस्त साधनों को निस्सन्हेह अप्रत्यक्ष माना जायगा और 'गुरु मिल्या रैदास जी दीन्हीं ज्ञान की गुटकी' भी मीरां की भक्ति को आदि स्त्रोत नहीं कहा जा सकता। इन्हीं कारणों से हम मीरा को किसी सम्पदाय में नही रख सकते। प्रभाव की दृष्टि से हम 'भागवत' तथा 'गीतागोविन्द' को ही स्वीकार कर सकते हैं जिनकी मधुरिमा एवं कृश्ण के प्रति जिनके अनन्य अनुराग ने मीरा को 'प्रेम दीवानी' बना दिया था। सन्त मत का प्रभाव तो खोजने भर के लिए ही कहा जायेगा। कृष्ण भगवान को पति रूप में स्वीकार करने वाली और उन्हीं के विरह में विह्वल होकर 'ले कटारी कंठ चीरूँ करूँगी अपघात' तक की कल्पना करने वाली मीरा अपनी तन्मयता और कृष्ण के प्रति एकनिष्ठा में अब तक के सभी कवियों को पीछे छोड़ जाती है। उनका नारीत्व भी उनकी इस सफलता में सहायक हुआ है।

मीरा ने जब राजघराना त्याग कर द्वारका और वृन्दावन के मन्दिरों में साधुओं के संग बैठकर अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति अपना हृदय लोक–लाज खोकर भी खोलना आरम्भ कर दिया तो सैकड़ों की संख्या में पहुँचे हुए भक्त और सधे हुए कवि मुक्त कण्ठ से इनकी प्रशंसा करने लगे। सोलहवीं शताब्दी के कृष्ण–गायकों में मीरा का स्वर काफी ऊँचा था और उनकी पुकार ही सच्ची पुकार लगती थी जिसने कृश्ण भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट किया। 'नरसी' जी का मायरा', 'गीत गोविन्द की टीका', 'राग गोविन्द' तथा 'राग सोरठा' इनके चार ग्रन्थ बताये जाते हैं।

कृष्ण का जो रूप बल्लभ, राधा वल्लभ, हरिव्यासी, गौड़ीय तथा सखी सम्प्रदाय वालों ने दे रक्खा था वह काव्य–रचना की दृष्टि से इतना आकर्षक सिद्ध हुआ कि अगणित कवियों ने इसे अपनाया और कृष्ण के किसी एक रूप पर अथवा सभी रूपों पर उन्होंने कुछ पद गाये। इन कवियों की सूची बड़ी लम्बी है और इससे भी लम्बी सूची उन कवियों की है जो इधर–उधर भटकते हुए भी कभी–कभी कृष्ण पर भी दो चार पद लिख गये हैं। वस्तुस्थिति यह है कि आगे चलकर तो प्रेम–काव्य और कृष्ण–काव्य में कोई काव्यगत अन्तर ही नहीं दीखता। किन्तु निश्चय ही इन कवियों का भक्ति आन्दोलन के विकास में कोई योग–दान नहीं है। हाँ इनमें वे, जो एकनिश्ट होकर कृश्ण की उपासना की दृष्टि से उनके गीत गाते रहे, भक्तों को प्रेरणा देने में अवश्य सफल हुए। नरोत्तम दास जी का नाम हम ऐसे कवियों में गिना सकते हैं, जिनके 'सुदामा चरित्र' ने महाराजा कृष्ण की महती उदारता, बन्धुत्व और विशालता का प्रचार समस्त हिन्दी–क्षेत्र में किया था। पर इस ढंग के कवि बहुत ही कम हैं, अधिकांश ने कृष्ण की माधुर्योपासना को ही अपनाया था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी ग्रन्थ रतनाकर कार्यालय बम्बई।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–नागरी प्रचारणी सभा, काशी।
3. वैदिक कोश– मधुसूदन शर्मा– बालचन्द्र मंत्रालय, जयपुर।
4. वैश्णव धर्म– परशुराम चतुर्वेदी– विवेक प्रकाशन, प्रयाग।
5. भक्तिदर्शन– ज्ञानानन्द, बैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
6. प्रेम भक्ति प्रकाश– घनश्याम दास, गीता प्रेस गोरखपुर।
7. भक्ति आन्दोलन का अध्ययन– डा0 रतिभान सिंह नाहर किताब महल प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद।

*****